|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 2: सांख्ययोग

5/6 (श्लोक 48-59), रविवार, 17 अगस्त 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/Zs8Hatd8G1A

समता - सर्वोत्तम योग

गीता परिवार के मधुर गीत, हनुमान चालीसा पाठ, भगवान् श्रीकृष्ण आराधना एवं दीप प्रज्वलन के पश्चात इस सत्र का प्रारम्भ हुआ।

श्रीभगवान् की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हम सब लोगों का ऐसा
सद्भाग्य जागृत हुआ है जो हम लोग अपने जीवन को सफल और सार्थक करने के लिए, अपने परमोच्च लक्ष्य को पाने के लिए, इहलौकिक और पारलौकिक जीवन में अपनी उन्नति करने के लिए, मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए और गीताजी के पठन-पाठन तथा अध्ययन में, उसके विवेचनों को सुनने में और कण्ठस्थ करने में, उसके सूत्रों को समझकर जीवन में लाने के लिए प्रवृत्त हो रहे हैं।

पता नहीं, हमारे इस जन्म के कोई पुण्य कर्म हैं, हमारे पूर्व जन्म के सुकृत हैं, हमारे पूर्वजों के सुकृत हैं या फिर किसी जन्म में किसी महापुरुष की कृपा दृष्टि हम पर पड़ गयी है। जिस कारण हमारा ऐसा भाग्योदय हो गया जो हम भगवद्गीता के लिए चुन लिए गए। यह साधारण बात नहीं है कि हम भगवद्गीता के लिए चुने गए हैं।

हमें बारम्बार अपने भाग्य की सराहना कर यह विचार करते रहना चाहिए कि हमने गीता जी को नहीं चुना है वरन् हम गीताजी द्वारा चुने गए हैं। अब यह छूटनी नहीं चाहिए और यही भावना रहेगी तो गीताजी कभी जीवन से नहीं छूटेगी।

पूरी गीताजी में सात सौ श्लोकों में से पाँच सौ चौहत्तर श्लोक श्रीभगवान् के मुख से निकले हैं। इन श्लोकों में श्रीभगवान् ने ज्ञान का भण्डार भर दिया है परन्तु हम विचार करें कि श्रीभगवान् कौनसी मूल बात कहना चाहते हैं, कौन सा सन्देश श्रीभगवान् अर्जुन को देना चाहते हैं? उत्तर में अनेक सन्देश हमारे सामने आ जाएँगे।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

कोई कहेगा कि श्रीभगवान् यह सन्देश देना चाहते हैं-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

कोई कहेगा-

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

कोई कहेगा-

मा फलेषु कदाचन।

कोई कहेगा-

मामेकं शरणं व्रज:।

ये सब बातें अपने स्थान पर सही हैं। ऐसी और भी बातें किसी और को लग सकती हैं परन्तु सन्तों ने जो विचार करके दिया और एक अभीष्ट जो श्रीभगवान् ने अर्जुन के सामने रखा वह छठे अध्याय का छियालीसवाँ श्लोक है-

तस्मात् योगी भवार्जुन।

अर्जुन! यह सब करके तुम योगी बन जाओगे।

योगी ऐसा शब्द है, जैसे कि एक व्यापारी अपने पुत्र से कहे कि तुम्हें व्यापारी बनना है। पुत्र पूछेगा कि किसका व्यापारी बनना है? यहाँ तो अनेक विकल्प हैं। व्यापारी बनना एक मौलिक बात है पर उसके अन्तर्गत आने वाली बहुत सारी बातें हो सकती हैं। इसी प्रकार योगी बनना भी मौलिक बात है। ध्यानयोगी, कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, भक्तियोगी या अन्य कोई योगी, कौन सा योगी बनूँ? यह उसके अन्तर्गत आने वाली बात है।

वेदव्यास भगवान् ने प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका को योग शास्त्र कहा कि यह योगी बनने का शास्त्र है। सारे अध्यायों को योग शास्त्र कहा और श्रीभगवान् को योगेश्वर कहा।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः

गीता का अन्तिम श्लोक सञ्जय के मुख से निकला और उन्होंने,

श्रीभगवान् को कहा-

योगेश्वर- समस्त योगों के ईश्वर।

सारी भगवद्गीता के अध्याय हैं-

योग और श्रीभगवान्- सभी योगों के ईश्वर- योगेश्वर।

आसन और प्राणायाम करने को हम योग कह देते हैं पर ये योग के अङ्ग हैं। महर्षि पतञ्जलि ने जिस योगसूत्र का प्रतिपादन किया। उस योग सूत्र में अष्टाङ्ग योग एक बात आयी। यह एक छोटी सी बात है पर उसमें-

यम, नियम,आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि,

ये आठ स्तर बताये हैं। इनमे आसन और प्राणायाम तीसरा और चौथा स्तर है। इसका अन्तिम स्तर है-समाधि।

समाधि अर्थात् बुद्धि की समता।

श्रीभगवान् इसी सूत्र को योग से परिभाषित करते हैं।

2.48

योगस्थः(ख्) कुरु कर्माणि, सङ्गं(न्) त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः(स्) समो भूत्वा, समत्वं(यँ) योग उच्यते॥2.48॥

हे धनञ्जय ! (तू) आसक्ति का त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर; (क्योंकि) समत्व (ही) योग कहा जाता है।

विवेचन- आसक्ति का पर्यायवाची श्रीभगवान् ने दिया-

सङ्ग त्यक्त्वा

अर्थात् विषय का सङ्ग नहीं करना।

किसी के घर में बड़े अच्छे पर्दे देखे। किसी की खाने की मेज देखी। हम दूसरे की हर बात पर आसक्त होते रहते हैं। किसी का मन फोन में, किसी का खेल में, किसी का मन खाने में अटका है।

आजकल एक नया सङ्ग उत्पन्न हो गया। दैनिक नयी-नयी साड़ियाँ और नए-नए सूट ऑफर में आ रहे हैं। बिना आवश्यकता के भी हम नयी-नयी वस्तुएँ खरीद रहे हैं। नए-नए भोगों को ढूँढने की प्रवृत्ति का त्याग करना चाहिए।

पूरा दिन जिसका चिन्तन किया तो वही ध्यान में भी आएगा। जिस विषय को हम समय देंगे, वह हमारे मन को हर लेगा। पूजा में भी वही आएगा। जिस विषय का हम सङ्ग करते हैं, उसकी आसक्ति का निर्माण होता है।

आसक्ति से स्पृहा,
स्पृहा से कामना,
कामना से वासना और
वासना से तृष्णा जन्म लेती है।

यही क्रम है-

सँग- आसक्ति, स्पृहा- कामना, वासना- तृष्णा।

बढ़िया लड्डू खाया। वाह, कहाँ का है? तुरन्त **आसक्ति** हुई।
तीन दिन बाद भी वह लड्डू याद आ रहा है- **स्पृहा**
दोबारा कब मिलेगा- **कामना**
मिल गया तो मिलता ही रहे- **वासना**
इस लड्डू के बिना तो रह ही नहीं सकते- **तृष्णा**
इसी में अटके रहते हैं और पुनर्जन्म चलता रहता है।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।।

हम करोड़ों जन्मों से इसी में अटके हुए हैं।
श्रीभगवान् कहते हैं कि आसक्ति का त्याग करके काम करो। मैं कार्य करूँ और सफलता मिले, ऐसी कामना मत करो। मिले तो ठीक बात, नहीं मिले तो भी ठीक बात।

किसान खेत में काम करेगा तो फसल तो होगी ही, कम या अधिक का नहीं सोचना चाहिए। सिद्धि और असिद्धि का नहीं सोचना चाहिए। श्रीभगवान् ने कर्म करने में रूचि न हो, ऐसा नहीं कहा है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि कर्म न करने में रूचि न हो, अर्थात् कर्त्तव्य कर्म तो हमें करने ही हैं और बिना मतलब के कर्म में मुझे

पड़ना नहीं है। आवश्यक कर्त्तव्य जितने भी हों, उन्हें करने में हम चूकें नहीं। जो बात हमारे लिए आवश्यक नहीं है, उसमें स्वयं को प्रवृत्त मत करो। श्रीभगवान् ने कहा कि सुख-दुःख में सम हो जाओ। जो सुख में जितना अधिक जश्न मनाएगा वो दुःख में उतना अधिक रोयेगा ।

श्रीभगवान् कहते हैं कि सुख-दुःख क्या होता है, इसे समझो। प्रिय के मिलन और अप्रिय के वियोग को मानते है सुख। चाहे वह वस्तु है, व्यक्ति या परिस्थिति। वहीं अप्रिय का मिलन और प्रिय का वियोग दुःख है जो नहीं चाहिए। वह आ गया और जो चाहिए, वह चला गया तो दुःख हो जाएगा। प्रिय-अप्रिय में जब समता आ जायेगी तो सुख-दुःख नहीं होगा। न मुझे कोई प्रिय है और अप्रिय तो कोई है ही नहीं।

कबीरा खड़ा बाजार में सबकी माँगे खैर।
न काहू से दोस्ती न काहू से बैर।।

जिसे किसी से दोस्ती नहीं, किसी से बैर नहीं तो उसे दुःख भी नहीं होगा। जिसे कोई प्रिय नहीं, अप्रिय नहीं, उससे मिलने का सुख नहीं और बिछड़ने का दुःख नहीं।

अर्जुन ने जयद्रथ से द्वेष कर लिया। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् अर्जुन के मन में जयद्रथ के प्रति द्वेष आ गया। पूरा दिन प्रयास करने के पश्चात् भी अर्जुन जयद्रथ को मार नहीं पाया। श्रीभगवान् ने कहा कि आज तुम अपने क्षत्रियत्व से भटक गए हो। युद्ध करने के बजाय द्वेष भाव से जयद्रथ का पीछा कर रहे हो। कभी जयद्रथ को ढूँढ़ते हो, कभी सूर्य को देखते हो पर सफल नहीं होते हो। सफल होना है तो द्वेष को त्यागना होगा।

समत्व की फलश्रुति ज्ञानी को भी चाहिए, कर्मयोगी को भी चाहिए और भक्त को भी चाहिए। यह सभी मार्गों में आवश्यक अभीष्ट है।

बाबा रामदेव से किसी ने पूछा कि आपका योग मोटापा घटाता है क्या? बाबा ने कहा कि योग समता लाता है। जो पतला है वो मोटा हो जायगा और जो मोटा है वो पतला हो जायेगा। जिसका शरीर क्षीण है उसका शरीर भरेगा। जिसके शरीर में अधिक चर्बी है, उसकी चर्बी घटेगी। समत्व आएगा।

अर्जुन ने सोचा कि यदि फल की इच्छा न करें। सिद्धि-असिद्धि में सम हो जाएँ तो काम करने में आनन्द कैसे आएगा? जीवन में रस ही नहीं रहेगा।

2.49

दूरेण ह्यवरं(ङ्) कर्म, बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ, कृपणाः(फ्) फलहेतवः॥2.49॥

बुद्धियोग (समता) की अपेक्षा सकाम कर्म दूर से (अत्यन्त) ही निकृष्ट है। (अतः) हे धनञ्जय ! (तू) बुद्धि (समता) का आश्रय ले; क्योंकि फल के हेतु बनने वाले अत्यन्त दीन हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् ने कहा कि सकामता बुरी बात नहीं है, परन्तु निम्न श्रेणी की है। अच्छा विचार करो कि हमारे दस काम हो गए और दस काम नहीं हुए तो शाम को मन सुखी रहेगा या दुःखी?

एक व्यापारी के पास पूरे दिन में पच्चीस ग्राहक आये। उसने चौबीस सौ रुपये कमाए परन्तु एक व्यापारी को गलती से साढ़े पाँच सौ का सामान पाँच सौ में बेच दिया। रात को जब बैठा तो उसे ध्यान आया कि वह सामान तो पाँच सौ चालीस का क्रय किया था, पाँच सौ पचास का विक्रय करना था पर पाँच सौ का ही बेचा। यह तो पचास रुपये की हानि हो गयी। चौबीस सौ रुपये जो कमाए वो याद नहीं रहे। पचास रुपये की हानि हो गयी, उसका दुःख होता रहा।

मान लो, हमने एयर कण्डीशनर क्रय किया। दिन भर उसका आनन्द लिया। शाम को बिजली चली गयी। एक घण्टे तक बिजली नहीं आयी। उसी समय मित्र का फोन आ गया। उसने पूछा कि क्या हाल है, तो क्या बोलेंगे? अरे, एक घण्टे से गर्मी में बैठी हूँ। दिन भर जो आनन्द लिया उसका स्मरण ही नहीं, एक घण्टे से गर्मी हो रही है, वह दुःख याद रहा।

सुख की अवधि थोड़ी होती है। दुःख की अवधि लम्बी होती है। जिसकी सकामता है उसको सकामता का फल मिल गया। वह अवधि थोड़ी रहेगी। दुःख होगा उसकी अवधि बड़ी होगी, इसलिए श्रीभगवान् कह रहे हैं कि सकाम भाव अच्छा नहीं है।

एक बार एक व्यक्ति अपने मित्र के यहाँ भोजन पर आमन्त्रित हुए। वहाँ जाने पर देखा कि भाईसाहब उदास हैं। भाभी जी से पूछने पर पता चला कि आज उन्होंने चिट्ठा जोड़ा है। व्यापारी लोग साल भर में एक बार चिट्ठा जोड़ते हैं। भाईसाहब से पूछा कि क्या घाटा हो गया है? भाभी ने बताया कि बीस लाख का मुनाफा हुआ है। इतना मुनाफा हुआ है तो उदास किसलिए हैं? पत्नी बोली, अरे! इन्होंने सोचा था कि पच्चीस लाख का मुनाफा होगा पर हुआ बीस लाख का। अपेक्षा पच्चीस की कर ली थी और मिला बीस, तो भी दुःख होता है। यह हम सब के साथ होता है कि जितना सोचा, उससे कम मिला तो भी हम सब दुःखी होते हैं। बहु के मायके से जितना सोचा, उससे कम माल आये तो दुःख होता है।

सौ नम्बर की आशा की और निन्यानवें नम्बर आये तो बच्चा भी दुःखी होता है। छियानवें आएँ तब तो क्या ही होगा, वह तो स्वयं को गोली ही मार लेगा। एक होता है जिसे पास होने की भी आशा नहीं होती और उसके साठ नम्बर आ गए तो वह लड्डू बाँटता है। एक छियानवें में गोली मार लेता है और एक साठ में लड्डू बाँटता है तो क्या नम्बर का सुख-दुःख से कोई सम्बन्ध है? नहीं, सुख-दुःख तो अपेक्षा में है।

श्रीभगवान् कह रहे हैं कि ये दीन लोग हैं। इन्होंने सुख-दुःख के फेर में अपनी बुद्धि को व्यर्थ कर रखा है। बात-बात पर दुःखी होने का स्वभाव बना लिया है, इसलिए हे अर्जुन! तुम इस सकामता से बाहर आ जाओ। कर्म की सिद्धि और असिद्धि में मन को अधिक लगाओगे तो सुख मिल भी गया तो स्मरण नहीं रहेगा और तुम दुःखी ही रहोगे। दस सुख मिलेंगे और दो दुःख मिलेंगे तो भी तुम दुःख के पीछे ही दुःखी होते रहोगे।

श्रीभगवान् ने जो हमें दस सुख दिए हैं उनका धन्यवाद नहीं करते, दो दुःख मिल गए तो उसकी शिकायत अवश्य कर देते हैं।

2.50

बुद्धियुक्तो जहातीह, उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व, योगः(ख्) कर्मसु कौशलम्॥2.50॥

बुद्धि-(समता) से युक्त (मनुष्य) यहाँ (जीवित अवस्था में ही) पुण्य और पाप दोनों का त्याग कर देता है। अतः (तू) योग (समता) में लग जा (क्योंकि) कर्मों में योग (ही) कुशलता है।

विवेचन- गीता जी की जो महत्त्वपूर्ण सूक्तियाँ हैं, उनमें से एक यह है-

योगः कर्मसु कौशलम्।

जितने भी योग केन्द्र में इस सूक्ति को पढ़ाया जाता है, वहाँ इसका अर्थ बताते हैं-
कर्म में कुशलता का नाम योग है, पर कुशलता से चोरी की तो वह भी योग कहलायेगा क्या? यह गलत है।

स्वामी रामसुखदास जी महाराज ने इसका अर्थ साधक-सञ्जीवनी में बताया। उन्होंने कहा- कर्मों में योग ही कुशलता है अर्थात् जो कर्मों में श्रीभगवान् से जुड़ना सीख गया उसके सारे कर्म कुशल हो जाते हैं।

श्रीभगवान् ने अट्ठारहवें अध्याय में कहा-

न द्वेष्टि अकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।

अर्थात कुशलता में आसक्ति मत रखो और अकुशलता में द्वेष मत रखो।

ठाकुर रामकृष्ण परमहँस का एक प्रसङ्ग है-

एक बार वे बैठे थे। एक बड़े अमीर सेठ ठाकुर रामकृष्ण के लिए कश्मीर से पश्मीने की शॉल लेकर आये। स्वामी जी को बताने लगे कि यह अँगूठी में से निकल जाती है। यह बहुत महँगी है, पर ठाकुरजी इतने बड़े योगी थे कि उन्हें इन सांसारिक पदार्थों में कोई आकर्षण नहीं था। इतना सुनकर ठाकुर ने उसे अरुचि से अपने पास रख लिया। सेठ जी को अपने पैसे का बड़ा अहङ्कार था।

ठाकुरजी ने अपने शिष्य रखाल को बुलाकर बाजार से लोटा लाने को कहा। रखाल और विवेकानन्द, ठाकुरजी के दो सबसे प्रिय शिष्य थे। रखाल लोटा लेकर आ गया। जैसे ही वहाँ रखे लौटे का जल नए लौटे में डाला, उसमें से पानी बहने लगा। ठाकुरजी नाराज हुए और रखाल को बुरी तरह से डाँटा। वहाँ पानी भरकर देखा क्यों नहीं, जाओ बदल कर दूसरा लेकर आओ। रखाल चुपचाप चले गए। इतने में जो पानी वहीं धरती पर बह गया था उसे उन्होंने सेठजी की लाई हुए पश्मीने की शॉल डालकर पैर से पोञ्छ दिया। यह देखकर सेठ जी बुरी तरह घबरा गए कि मैं इतना कीमती शॉल ठाकुरजी के लिए लेकर आया हूँ और इन्होंने इसका पोञ्छा बनाकर पानी पोञ्छ दिया।

अब नरेन्द्र से नहीं रहा गया। उन्होंने पूछा कि यह बात समझ नहीं आयी। दो आने के लोटे के लिए आपने रखाल को इतना डाँट दिया और दो सौ रुपये की शॉल से अपने पोञ्छा लगा दिया। ठाकुरजी ने कहा कि तुम्हारे सारे कर्म कुशल होने चाहिए तभी तुम योगी बन सकते हो।

तुम अपना कर्म कितने ध्यान से करते हो, इससे तुम्हारा योग सिद्ध होता है। मेरे लिए दो सौ रुपये और दो रुपये के शॉल में कोई अन्तर नहीं है। मेरे लिए शॉल का काम ठण्ड मिटाना है। उसके लिए दो रूपए की शॉल भी अच्छी है। मुझे धन की आसक्ति नहीं है। इस सेठ को अपने धन की बड़ी आसक्ति है। इसका अहङ्कार तोड़ने के लिए मैंने ऐसा किया।

सन्तों के न्याय अलग ही होते हैं। योगी को कुशल होना चाहिए। जो कुशल नहीं है, वह योगी नहीं है। परिणाम यह हुआ कि ठाकुर रामकृष्ण के सभी शिष्य अत्यन्त कुशल हुए।

2.51

कर्मजं(म्) बुद्धियुक्ता हि, फलं(न्) त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः(फ्), पदं(ङ्) गच्छन्त्यनामयम्॥2.51॥

कारण कि समतायुक्त बुद्धिमान साधक कर्मजन्य फल का अर्थात संसारमात्रका त्याग करके जन्मरूप बन्धन से मुक्त होकर निर्विकार पद को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् ने कहा कि पाप-पुण्य की बात नहीं है, यह तो बहुत छोटी बात है। जन्म और मरण के बन्धन से छुटकारा पाना चाहिए।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

जो इस चक्र से छूटता है वह इससे छूटकर परम पद को प्राप्त करता है।

2.52

यदा ते मोहकलिलं(म्), बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं(म्), श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥2.52॥

जिस समय तेरी बुद्धि मोहरूपी दलदल को भली भांति तर जायगी, उसी समय (तू) सुने हुए और सुनने में आने वाले (भोगों से) वैराग्य को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- हे अर्जुन! जिस समय तुम्हारी बुद्धि मोहरूपी दलदल से तर जायेगी, उसी समय तुम सुने हुए और सुनने में आने वाले भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जाओगे।

श्रीभगवान् वैराग्य बुद्धि के द्वारा परमात्म की प्राप्ति के हेतु अर्जुन को बताते हैं।

2.53

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते, यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिः(स्), तदा योगमवाप्स्यसि॥2.53॥

जिस काल में शास्त्रीय मतभेदों से विचलित हुई तेरी बुद्धि निश्चल हो जायगी (और) परमात्मा में अचल (हो जायगी), उस काल में (तू) योग को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि भाँति-भाँति के वचनों को सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा में अचल स्थित होकर ठहर जायेगी, तब तू योग को प्राप्त होगा अर्थात् तेरा परमात्मा से योग हो जाएगा।

मुक्ति क्या होती है?

हमने कैवल्य शब्द सुना है, निर्वाण सुना है, आत्म साक्षात्कार सुना है, मोक्ष सुना है, भगवत् प्राप्ति सुनी है, साकेत आदि लोकों की प्राप्ति सुनी है। ये सभी शब्द एक ही हैं।

अर्जुन के मन में आया कि राग है, वैराग्य नहीं है तो आसक्ति कैसे रहती है?

जब तक मोह है, उसी दलदल में फँसा रहेगा। एक राग को छोड़कर दूसरा राग पकड़ने से दलदल नहीं छूट सकता।

कई लोगों की आदत होती है कि वे पान बहुत खाते हैं। एक समय आने पर सभी घरवाले, पड़ोसी, मित्रों के कहने से वे पान खाना छोड़ देते हैं, फिर उसे जब पान की तलब होती है तो वह पान छोड़कर पान मसाला खाने लगते हैं, फिर खैनी पकड़ लेते हैं तो उससे मुक्त कैसे होंगे? उन्होंने एक राग छोड़कर दूसरा राग पकड़ लिया।

श्रीभगवान् कहते हैं कि एक राग छोड़कर दूसरा राग नहीं पकड़ना है।

बहुत सारी सुनी हुई बातों से बुद्धि भ्रमित होती है। श्रीभगवान् कहते हैं कि उससे ऊपर उठ जाओ।

2.54

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः(ख्) किं(म्) प्रभाषेत, किमासीत व्रजेत किम्॥2.54॥

अर्जुन बोले - हे केशव ! परमात्मा में स्थित स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य के क्या लक्षण होते हैं? वह स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य कैसे बोलता है, कैसे बैठता है (और) कैसे चलता है अर्थात व्यवहार करता है?

विवेचन-अर्जुन ने श्रीभगवान् से पूछा कि जिनकी आप बात कर रहे हो, दुनिया में ऐसे लोग भी होते हैं क्या?

हे केशव! समाधि में स्थित हुए मनुष्य के लक्षण क्या हैं?
स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है, कैसे चलता है?
इसका कोई उदहारण है क्या?

2.55

श्रीभगवानुवाच
प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः(स्), स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥2.55॥

श्रीभगवान् बोले - हे पृथानन्दन ! जिस काल में (साधक) मन में आयी सम्पूर्ण कामनाओं का भली भांति त्याग कर देता है (और) अपने आपसे अपने आप में ही सन्तुष्ट रहता है, उस काल में (वह) स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् ने कहा कि अर्जुन तुमने ऐसे पुरुष नहीं देखे हैं परन्तु मैंने तो ऐसे बहुत से मनुष्यों को देखा है।

श्रीभगवान् ने कहा- वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, सुख-दुःख से जो अतीत हो जाए, उनको बाहरी वस्तु में सुख नहीं मिलता अर्थात् ऐसे मनुष्य अपने भीतर ही सन्तुष्ट रहते हैं।

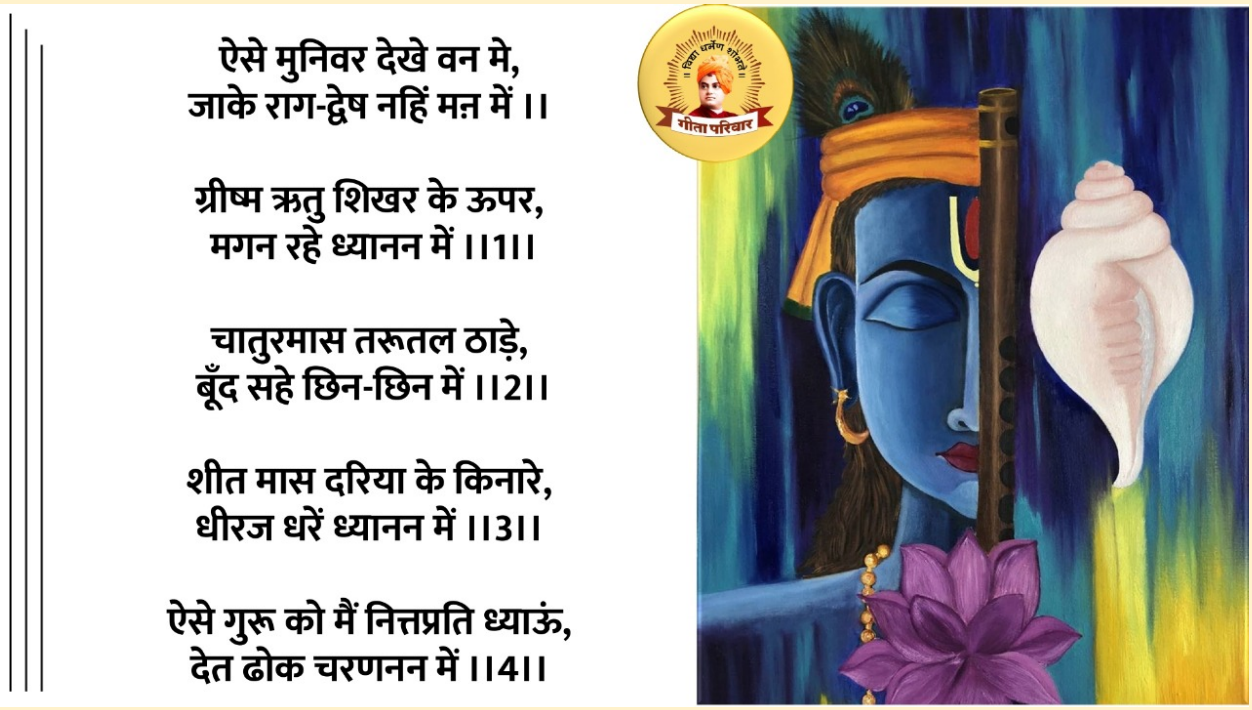

ये ऋतु परिवर्तन ही सुख-दुःख के प्रतीक हैं। ऐसे स्थितप्रज्ञ मनुष्यों पर गर्मी, सर्दी, वर्षा का प्रभाव नहीं पड़ता है।

हम लोग ऐसा मानते हैं कि वस्तुओं में सुख है। कोई हमें डेढ़ लाख वाला आई फोन दे दे तो आनन्द आ जाएगा, परन्तु यदि ऐसे

किसी व्यक्ति को आई फोन दे दिया जो जङ्गल में रहता है और उसे फोन के बारे में कुछ भी पता नहीं है तो क्या उसे उसमें आनन्द आएगा? जिसकी लालसा उस आई फोन में थी उसे उसमें सुख मिल रहा था पर जिस व्यक्ति की उस फोन में कोई लालसा नहीं थी तो उसे फोन से कोई सुख नहीं मिला।
हमारी लालसाएँ सुख की प्रतीति कराती हैं, किन्तु वास्तव में वस्तु में सुख नहीं होता।

गुस्से में बैठे व्यक्ति को उसका मनपसन्द भोजन कराया जाए तो भी उसे उस भोजन में कोई रूचि नहीं होगी अर्थात् सुख उस पसन्दीदा व्यञ्जन में नहीं है। मन बिगड़ा हो तो वस्तु भी सुख नहीं दे सकती। सुख और दुःख अपने मन के भीतर हैं और जो इसे सीख गया वही स्थितप्रज्ञ है।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः
यही सबसे बड़ा सूत्र है।

2.56

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः(स्), सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः(स्), स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥2.56॥

दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता (और) सुखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में स्पृहा नहीं होती (तथा) जो राग, भय और क्रोध से सर्वथा रहित हो गया है, (वह) मननशील मनुष्य स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता और सुख की प्राप्ति पर जो सर्वदा नि:स्पृह है। जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो जाएँ, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि वाला होता है।
जिसने तप कर लिया उसको दुःखों की प्राप्ति से उद्वेग नहीं होता। कर्म सिद्धि होते ही **कामना, आशा, तृष्णा और वासना** का निर्माण होता है और कर्म असिद्धि से उद्वेग का निर्माण होता है।

श्रीभगवान् कह रहे हैं कि **स्पृहा से राग, राग से भय और भय से क्रोध** होता है।

जिस वस्तु की **स्पृहा** मन में होती है उस वस्तु से **राग** होता है।
जिस वस्तु से **राग** होता है वह चला न जाये उसका **भय** होता है और चला गया तो उसके कारण **क्रोध** होता है।

गोस्वामी जी ने अयोध्या काण्ड में भगवान् श्रीराम की मङ्गलाचारण में स्तुति की।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं उन भगवान् श्रीराम की वन्दना करना चाहता हूँ, जिनकी राज्यभिषेक का समाचार सुनकर चेहरे पर प्रसन्नता नहीं बढ़ी और वनवास का समाचार सुनकर जिनकी प्रसन्नता नहीं घटी।

सरदार पटेल का एक प्रसङ्ग है। वे बहुत अच्छे अधिवक्ता भी थे। एक बार वे अपने मुवक्किल का केस (अभियोग) लड़ रहे थे। उनकी निजी सहायक ने एक पर्ची लाकर दी। जज को लगा कि केस के विषय में कोई नयी जानकारी आयी है। पटेल साहब ने पर्ची को पढ़ा और अपनी जेब में रख लिया। मुकदमे का निर्णय उनके पक्ष में हो गया। निर्णय होने के बाद जज ने पूछा कि पर्ची में क्या केस (अभियोग) के विषय में कुछ जानकारी थी? पटेल साहब ने कहा नहीं, उसमें मेरी पत्नी के स्वर्गवास की सूचना थी।

जज ने अचम्भित होकर कहा कि आपने किसी को पता भी नहीं लगने दिया। आप केस छोड़कर भी जा सकते थे। इतनी बड़ी दुर्घटना हो गयी, फिर भी आप नहीं गए? सरदार पटेल ने कहा कि यदि अस्वस्थ होने की सूचना होती तो मैं चला भी जाता परन्तु

मृत्यु होने की सूचना थी। उसमें मेरे जाने से वहाँ कोई अन्तर नहीं पड़ता। मेरा (पक्षकार) मुवक्किल मुझ पर निर्भर था और आज इस केस का निर्णय भी होना था इसलिए कर्त्तव्य पालन के लिए मुझे यही उचित लगा, इसलिए मैं नहीं गया।

वे दुःख से उद्विग्न नहीं हुए, इसलिए तो वे "**लोह पुरुष**" कहलाए।

2.57

यः(स्) सर्वत्रानभिस्नेहः(स्), तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.57॥

सब जगह आसक्ति रहित हुआ जो मनुष्य उस-उस शुभ-अशुभ को प्राप्त करके न तो प्रसन्न होता है (और) न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

विवेचन- यदि कोई वृन्दावन जाए और वहाँ से श्रीभगवान् के लिए मुकुट या कुण्डल खरीदे तो दुकानदार कहता है कि थोड़ा स्नेह भी ले जाओ। स्नेह कहते हैं मोम को, जिससे मुकुट को चिपकाया जायेगा। स्नेह (प्यार) चिपकाता है।

आसक्ति रहित व्यक्ति को शुभ वस्तु प्राप्त हो अथवा अशुभ। उसे न प्रसन्नता होती है न ही दुःख होता है। कितने ही लोग ऐसे हैं कि कुछ भी अच्छा हो जाए तो फेस बुक पर फोटो डालते हैं और फिर देखते हैं कि किस-किसने उसे देखा और पसन्द किया, किस-किसने उस पर टिपण्णी की, परन्तु यदि इसके विपरीत हो जाए तो दर्द भरे नगमें व गीत सुनने लगते हैं। ग़ालिब की शायरी ढूँढ़ते हैं।

2.58

यदा संहरते चायं(ङ्), कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः(स्), तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.58॥

जिस तरह कछुआ (अपने) अंगों को सब ओर से समेट लेता है, (ऐसे ही) जिस काल में यह (कर्मयोगी) इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को (सब प्रकार से हटा लेता) है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

विवेचन- कछुआ अनोखा प्राणी है। वह अत्यधिक कोमल होता है। इतना कि थोड़ी सी चोट से मर सकता है परन्तु श्रीभगवान् ने उसको इतना कठोर आवरण दिया है कि शेर, चीता, हाथी भी आ जाए तो वे उसे तोड़ नहीं सकते। तनिक सी भी आहट होते ही कछुआ अपने हाथ, पैर, मुख अन्दर करके अपने खोल में सिमट जाता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि इसी प्रकार तुम भी आहट आते ही अन्दर सिमट जाओ। दुःखों की तनिक सी भी आहट आये तो भी और सुखों की आहट आये तो भी, आकर्षण आये तो भी अन्दर सिमट जाओ।

गीता प्रेस के संस्थापक परम आदरणीय जयदयाल गोयन्दका जी सदैव अपने पैर के नाखून देख कर चलते थे। इधर-उधर नहीं देखते थे तो मन के किसी आकर्षण में फँसने का कोई भी स्थान नहीं होता था। उनके अन्तिम समय में दो लोगों को उन्हें गिरने से बचाने हेतु साथ चलना पड़ता था।

गाँधी जी ने अस्वाद का व्रत लिया। जो वस्तु स्वाद में अच्छी लगेगी उसे दोबारा न खाना। अपने अङ्गों को समेटो। हमारा मन कहाँ-कहाँ अटकता है, उसे ढूँढो।

अयोध्या काण्ड में एक वर्णन है-

भरतजी जब रामजी को मिलने के लिए चित्रकूट की यात्रा पर चलते हैं तब भारद्वाज मुनि ने भरतजी का, सभी रानियों का और

चतुरङ्गिणी सेना का स्वागत किया और उनसे कहा कि आश्रम में विश्राम करें। भरतजी को लगा कि ये तो मुनि हैं और हम सबको स्वागत के लिए बुला रहे हैं! मुनि ने कहा कि हम यहाँ सब कुछ त्याग कर बैठे हैं। हमें अपने लिए कुछ नहीं चाहिए पर हमारी तपस्या के बल से हमारे पास इतना सामर्थ्य है कि आपकी सारी सेना हेतु सभी भोगों की व्यवस्था कर सकते हैं।

उन्होंने रिद्धि-सिद्धि का आह्वान किया। वहाँ पर फल-रस की नदियाँ बहने लगी। जिसको जो पकवान चाहिए, वहाँ उपलब्ध हो गया। पूरी सेना के लिए सहस्त्रों तम्बू और शैया लग गए। रिद्धि-सिद्धि ने देवलोक के खाद्य पदार्थ, शयनकक्ष की पूर्ण व्यवस्था कर दी। भरतजी के लिए भी सभी साधन उपलब्ध कराये गए परन्तु उन्होंने मन से एक भी भोग का स्पर्श तक नहीं किया। उनका मन तो प्रभु श्रीराम के चरणों में ही लगा था।

जीवन कैसा हो? भोगों की ओर मन भागता है और अपने-आप को रोकना पड़ता है। एक समय का भोजन छोड़ दिया, चाय छोड़ दी, मिठाई छोड़ दी। ऐसी घोषणाएँ तो हम कई स्थानों पर कर देते हैं परन्तु मन उसके पीछे भागना नहीं छोड़ता।

एक बार एक गुरुजी थे। वे किसी से पैर नहीं छुआते थे। कोई आता था तो उनके शिष्य पहले से ही कह देते थे कि गुरु जी पैर नहीं छुआते हैं, अतः पैर नहीं छूना। एक बार एक व्यक्ति आया और गुरुजी से कुछ बात की और चला गया। गुरुजी ने शिष्य से कहा कि तुमने उसको कहा नहीं कि पैर नहीं छूना? शिष्य ने कहा कि गुरु जी उसने आपके पैर तो छुए ही नहीं। वह तो पुराना शिष्य था, जानता था। गुरु जी ने कहा, तो क्या हुआ? उसे बता तो देते। गुरु जी की बुद्धि इसी बात में अटक गयी थी कि सबको बताया जाए कि वो पैर नहीं छुआते।
यह वासना अति सूक्ष्म है।

चाय छोड़ी तो सबको बताने लगे कि सब उन्हें श्रेष्ठ मानें। अब इसी से **आसक्ति** का निर्माण हो गया। यह अति महत्त्वपूर्ण बात है कि-

त्याग का भी त्याग करना पड़ता है। त्याग की सूचना भी दूसरे को नहीं होनी चाहिए।

साधना में इस प्रकार स्वयं को समेटना पड़ता है।

2.59

विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं(म्) रसोऽप्यस्य, परं(न्) दृष्ट्वा निवर्तते ॥2.59॥

निराहारी (इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाले) मनुष्य के (भी) विषय तो निवृत्त हो जाते हैं (पर) रस निवृत्त नहीं होता। (परन्तु) परमात्म तत्त्व का अनुभव होने से इस स्थितप्रज्ञ मनुष्य का तो रस भी निवृत्त हो जाता है अर्थात उसकी संसार में रसबुद्धि नहीं रहती।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! मात्र विषयों से निवृत नहीं होना है उसकी **आसक्ति** से भी मुक्त होना है।

चाय नहीं छोड़नी, चाय की आसक्ति भी छोड़नी है। मीठा नहीं खा रहे पर मीठे में मन अटका हुआ है। यह आसक्ति ही तो है।

हरि नाम सङ्कीर्तन के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तरी सत्र प्रारम्भ हुआ।

हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम्।

प्रश्नोत्तरी सत्र

प्रश्नकर्ता- श्री राम भैया।
प्रश्न- जिस प्रकार हमारे मन में किसी चीज के लिए आसक्ति आती है और हमने उसे कम करने का प्रयास किया या छोड़ दिया। जैसे हमने चाय छोड़ दी और कभी मिली तो पीने का मन बन गया। यदि एक बार भी हमारे मन में फिर से आ जाए तो क्या उसे भी हम आसक्ति कहेंगे?
उत्तर- हाँ जी, यदि चाय पीने की इच्छा है तो वह आसक्ति ही है। आरम्भ तो पदार्थ को छोड़ने से ही होगा। जब उसकी आसक्ति नहीं होगी तो यदि चाय सामने भी रखी है तो हमारी पीने की इच्छा नहीं होती और यदि इच्छा हो जाए तो वह आसक्ति ही है।

प्रश्नकर्ता- कविता दीदी।
प्रश्न- जब कर्मों से ऊपर होकर कर्ता का भाव हमारे मन में आता है और हम पूर्ण रूप से भक्ति में रहते हैं। उसमें हमें बहुत आनन्द आने लगता है। यह सब परमात्मा की इच्छा से हो रहा है, जब हम यह मान लेते हैं परन्तु जब भक्ति प्रगाढ़ हो जाती है तो परमात्मा की याद आने लगती है। ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और हर चीज से इच्छा छूटने लग जाती है। उस समय हमें अपनी भक्ति को कैसे बनाए रखना है?
उत्तर- यह एकदम सही बात है। एक सूफी ने दूसरे से पूछा कि हमारी स्थिति अध्यात्म में ज्यादा बढ़ रही है तो दूसरे ने कहा- जब बोलने से, न बोलना अच्छा लगे और खाने में, न खाना अच्छा लगे। चलने से, न चलना अच्छा लगे। जब इस प्रकार की स्थिति का मन में निर्माण होने लग जाए। भोगों से अरुचि होने लग जाए तो यह आध्यात्मिक स्थिति बनने का प्रमाण है परन्तु कई बार मन में अकर्मण्यता आ जाती है तो उसे आश्रय नहीं देना है।

तुम्हारे अन्दर कर्म न करने में रुचि न हो जाए कि अब मुझे कुछ नहीं करना है, बस भजन ही करना है। ऐसा नहीं होना चाहिए। बड़े से बड़े साधु महात्मा या ऋषि-मुनि हैं, उन्हें भी कर्म तो करना ही पड़ता है।

परम श्रद्धेय महाराजजी को मैंने अन्तिम समय तक माला फेरते हुए देखा है। हमारा कर्त्तव्य कर्म कभी न छूटे, इसका ध्यान रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्नकर्ता- दुर्गा प्रसाद भैया।
प्रश्न- महाभारत में दो पात्र ऐसे हैं, **द्रौपदी और विदुर।** उनसे कभी भी कोई गलती नहीं हुई है। क्या सच में ऐसा है?
उत्तर- हाँ, उन दोनों से एक भी अपराध नहीं हुआ है।

प्रश्न- द्रोपदी ने कहा था, अन्धे का पुत्र अन्धा, तो वह क्या गलती नहीं थी?
उत्तर- यह सब आपने बी.आर. चोपड़ा का जो सीरियल बना था, उसमें सुना होगा। महाभारत में कहीं ऐसा नहीं लिखा है। सीरियल में यह बात मसाले के तौर पर डाली गई है।

प्रश्नकर्ता- दुर्गा प्रसाद भैया।
प्रश्न- क्या दया के समय जाति, धर्म, जात-पात और देश का विचार नहीं करना चाहिए, केवल दान के समय करना चाहिए? जिस प्रकार यदि किसी सैनिक ने आतङ्की को गोली मार दी और कहीं छुप गया तो क्या आतङ्की को बचाना चाहिए?
उत्तर- हमारे में यह नियम नहीं है। हमें तो जो घायल है उसे हॉस्पिटल पहुँचाना ही चाहिए। कसाब को अगले दिन फाँसी होनी थी परन्तु उसे बुखार आ गया तो भी उसे डॉक्टर को दिखाया गया, क्योंकि दया के अधिकारी तो सभी हैं।

प्रश्नकर्ता- अनीता दीदी।
प्रश्न- पितृ पक्ष में बेटा ही सब तर्पण करता है, यदि कभी बेटा बाहर गया है तो क्या बेटी ये सब कर्म कर सकती है?
उत्तर- बेटी नहीं कर सकती। बेटे का बेटा या भाई कर सकता है। उस कुल का कोई भी पुरुष कर सकता है। वह भी नहीं है तो ब्राह्मण भी यह कर्म कर सकते हैं ।

"ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु"

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||